R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17
मूल्य-4 रुपये, वर्ष-17, अङ्क-7 जुलाई 2018 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख-समाचार पत्र

मङ्गलायतन

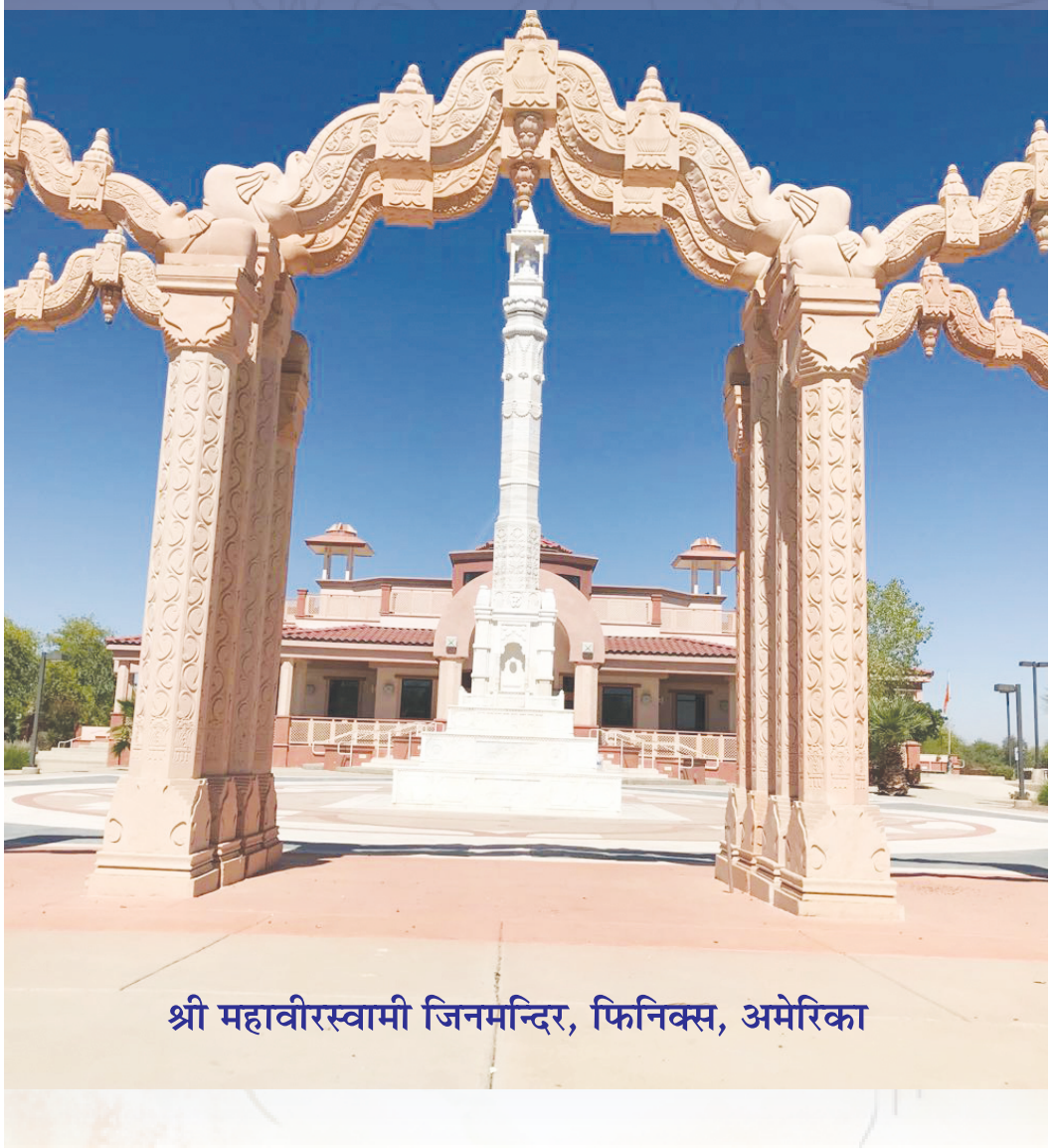

श्री महावीरस्वामी जिनमन्दिर, फिनिक्स, अमेरिका

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

वीरशासन जयन्ती एवं मङ्गल विद्यापीठ उद्घाटन

[दिनांक - 28, शनिवार, जुलाई 2018]

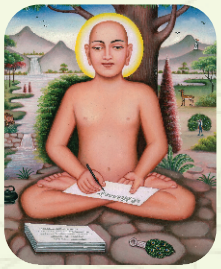

आमन्त्रणपत्रिका

सत्धर्मप्रेमी, बन्धुवर सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

जिनशासन,एवं **पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के प्रभावनायोग से, **तीर्थधाम मङ्गलायतन** निरंतर, जिनशासन की प्रभावना में प्रगतिशील है।

देश-विदेश के मुमुक्षुओं की भावना को साकार रूप देते हुए अब ट्रस्ट ने 'पत्राचार द्वारा आनलाइन जैनदर्शन शिक्षण' को प्रारम्भ किया है। इस 'मङ्गल विद्यापीठ' का उद्घाटन वीरशासन जयन्ती के अवसर पर धूमधाम से किया जा रहा है।

इस मङ्गल विद्यापीठ में, देश के प्रसिद्ध विद्वानों के मार्गदर्शन में जैनदर्शन के विभिन्न कोर्सों को हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में तैयार किया गया है। जिससे घर बैठे विश्व के किसी भी कोने में, आनलाइन जिनधर्म का शिक्षण प्राप्त किय जा सकता है।

आइये, **तीर्थधाम मङ्गलायतन** के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में वीरशासन जयन्ती के मङ्गल कार्यक्रम में, **मङ्गल विद्यापीठ** का उद्घाटन कर जिनधर्मप्रभावना की अनुमोदना करें।

माङ्गलिक कार्यक्रम

28-7-2018

प्रात:	6.30 से 7.00	जिनेन्द्र प्रक्षाल
	7.00 से 8.00	केवलज्ञान पूजन
	8.00 से 8.30	दिव्यध्वनि प्रसारण
	8.30 से 9.00	दिव्यध्वनि पूजन
	9.00 से 9.30	स्वल्पाहार
	9.30 से 10.00	पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन
	10.00 से 11.00	उद्घाटन समारोह
	11.00 से 12.00	स्वाध्याय - वीरशासन
सायं	6.30 से 7.30	जिनेन्द्रभक्ति
रात्रि	7.30 से 9.00	ज्ञानगोष्ठी - वीरशासन

विद्वत् सान्निध्य

पण्डित वीरेन्द्र जैन, आगरा; पण्डित अशोक लुहाड़िया; पण्डित सचिन जैन; पण्डित संजय शास्त्री; पण्डित सुधीर शास्त्री; सचेन्द्र शास्त्री

कार्यक्रमस्थल

तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा मार्ग, निकट हनुमान चौकी, सासनी-204216 (हाथरस)

आयोजक : श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट अलीगढ़

सम्पर्कसूत्र -

(कार्या०) 9997996346; पण्डित अशोक लुहाड़िया-9897890893; सुधीर शास्त्री-9756633800

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-7 (वी.नि.सं. 2544) जुलाई 2018

गतांक से आगे...

प्रशममूर्ति बहिनश्री के वचनामृतों का भावानुवाद

(छन्द - गीतिका)

काल अनादि से भटकता, जीव अज्ञानी सदा।
लालसा सुख की मैं पीता, विषय विष ही सर्वदा॥
कभी सच्चे सुख बतानेवाले, पर संशय किया।
कभी उसकी कर उपेक्षा, स्वरूप से वंचित रहा॥
कभी बिन पुरुषार्थ अटका, कभी चढ़ा और कभी गिरा।
बीता अनन्ता काल यों ही, निज स्वरूप न मिल सका॥
पुण्य के इस उदय से है, देह मानव का मिला।
सत्पुरुष का योग पाया, काल है पुरुषार्थ का॥
योग ऐसा सच्चा तुझको, नहीं मिलेगा बारबार।
जीव तू पुरुषार्थ कर ले, गुरु जगा रहे बारबार॥60॥

जिसे सचमुच ताप लगता हो, उदधि संसार में।
वही पा सकता किनारा, इस जगत निःसार में॥
विभावों से ऊब जाये, त्रास जब लगने लगे।
मार्ग मिलता है उसे, जब प्यास आतम की लगे॥
जिसे जिसकी रुचि होती, वीर्य लगता है वहाँ।
रात दिन पीछे पड़े तो, कार्य सिद्धि हो तहाँ॥61॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़
पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्रीमान् भीमजी भगवानजी शाह
हस्ते **श्री विजेन वी. शाह,**
फ्लैट नं. - 9, मैपलेवुड कोर्ट,
31-इस्टवरी एवेन्यु,
नार्थवुड मिडिलसेक्स
- एच.ए. 63 एल.एल.
(यू.के.)

क्या - कहाँ

मैं अपने चैतन्यसुख का..... 5
मोक्ष के लिए योगभक्ति..... 8
आत्मा समीप है..... 11
निर्विचिकित्सा-अंग में प्रसिद्ध..... 19
आचार्यदेव परिचय शृंखला..... 22
कुगुरु..... 29
समाचार-दर्शन..... 33

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

मैं अपने चैतन्यसुख का अनुभव करता हूँ

[नियमसार, कलश 199 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

(आश्विन शुक्ला-2)

अहा, इस चैतन्य संपत्ति के समक्ष जगत की किसी भी संपत्ति का मूल्य नहीं है। जिसने अंतर की अनुभूति द्वारा ऐसी चैतन्य संपत्तिवाले आत्मा को प्राप्त किया है, वही सच्चा लक्ष्मीवान है; बाकी जो बाह्य के संयोग से बड़ाई लेना चाहते हैं, वे सब दरिद्र हैं। भगवान! तू निर्धन नहीं, दीन नहीं; तू तो चैतन्य संपत्ति से भरपूर भगवान है... सुख की संपत्ति तो तुझमें ही भरी हुई है। ज्ञान को अंतर्मुख करके अपने स्वरूप की समाधि द्वारा उसका अनुभव कर... तेरा आनंदमय आत्मवैभव तीन लोक में सर्वश्रेष्ठ है, वह तेरी ही समाधि का विषय है-अर्थात् तेरे अंतर्मुख उपयोग में ही वह प्राप्त होता है; इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से उसकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिए अंतर के उपयोग द्वारा सुख-संपत्ति से भरपूर अपने 'चैतन्यधाम' में आनंद से निवास कर।

अनंत चैतन्यशक्ति से भरपूर अपनी प्रभुता को भूलकर जीव संसार की चार गतियों में जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ शुभराग के फलरूप दु:ख का ही अनुभव किया। अरेरे, आत्मा तो चैतन्यस्वरूप विशुद्ध सुखधाम है; उसको भूलकर मैंने अभी तक विषवृक्ष के फल की भाँति दु:ख का ही अनुभव किया; परंतु अब मैं उस भूल को छोड़ता हूँ और अपने शुद्ध चैतन्यसुख का अनुभव करता हूँ। मेरी अनुभूति में भव के दु:ख का अभाव है। चैतन्यस्वभाव के अमृत को भूलकर चार गति का भाव, वह विषवृक्ष है, उसका फल दु:ख ही दु:ख है—चाहे स्वर्ग में हो, वहाँ भी जीव अज्ञानभाव से दु:खी है। परंतु जहाँ चैतन्यशक्ति का अनुभव हुआ, स्वयं ने अपनी प्रभुता देखी, वहाँ अपने आत्मा में से ही अनुपम अतीन्द्रिय रागरहित का महान

सुख उत्पन्न हुआ, उस शुद्ध सुख का ही मैं अनुभव करता हूँ। देखो, यह धर्मात्मा का अनुभव!

भाई! तेरे सुख की उत्पत्ति तो आत्मा में से होगी कि बाह्य में से आयेगी? अरिहंतों को जो केवलज्ञानादि अनंत सुख से भरपूर लक्ष्मी प्रगट हुई है, वह कहाँ से आयी? राग तो उन्हें नहीं है, विषयों की ओर लक्ष्य नहीं है, अंतर के चैतन्य के वेदन में से ही परम सुख आता है। ऐसे चैतन्य के वेदन से हटकर अन्य की ओर लक्ष्य जाने से जो वेदन होता है, वह तो विषफल की भाँति दुःख है; ऐसे समस्त पराश्रित भाव को दुःखरूप जानकर धर्मी छोड़ देता है तथा अंतर्मुख अपने चैतन्यतत्त्व के वेदन द्वारा आत्मा के शुद्ध सुख का अनुभव करता है। ऐसे अनुभव का नाम समाधि है, उसमें शांति है; वह निजगृह में निवास है।

अरे जीव! तू अनंत काल से शांति के लिए तरस रहा है तो अपनी प्यास बुझाने के लिए अंतर्मुख होकर चैतन्यसरोवर के अतीन्द्रियरस का स्वाद ले। तेरे अंतर में ही मीठे मधुर आनंदरस का सरोवर भरा हुआ है, उसमें उतरकर आनंदरस नहीं पीता और मृगजल की भाँति बाह्य के शुभ-अशुभ विषयों की ओर दौड़कर तू दुःखी हो रहा है। परंतु तेरा आत्मा उस शुभ-अशुभ रागस्वरूप नहीं है, तेरा आत्मा तो सुख के चैतन्य से भरा हुआ है। अपनी रुचि को परभाव से हटाकर अपने चैतन्य में लगा। आनंदरस का धाम तू स्वयं ही है। आनंद-ज्ञान-शांति ऐसे अनंत रस तुझमें भरे हैं। अंतर में एक बार दृष्टि तो कर। इस शरीर के स्थान पर ही (परंतु शरीर से बिल्कुल भिन्न) तू स्वयं अंतर में चैतन्यरस से भरपूर है, राग से भी तेरा चैतन्यरस भिन्न है। इस प्रकार चैतन्यस्वरूप के सुख को तू अनुभव में ले।

बस, अब मैंने अपना पक्ष बदल दिया है; विभाव से विमुख होकर मैं अपने स्वभाव के सन्मुख हुआ हूँ। मेरा चैतन्यस्वभाव अतीन्द्रिय सुख की सुगंध से भरपूर है, परभाव की उसमें गंध भी नहीं है। अनादि से परभाव का पक्ष करके दुःखी हुआ था, अब परभाव का पक्ष छोड़कर, अपने

चैतन्यस्वभाव के पक्ष में मैं अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता हूँ। आत्मा के अनुभव में तो आनंद का झरना झरता है।

आत्मा में से क्या निकलता है ? आत्मा में से तो चैतन्यसुख निकलता है। ध्रुवस्वभाव में परिणति एकाग्र होने से वह पर्याय अतीन्द्रिय आनंदरूप हो गई है। जिसमें अतीन्द्रिय आनंद नहीं आता, वह ज्ञान नहीं है। अंतर्मुख ज्ञान में आत्मा के अनंत रस भरे हैं, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का समावेश है, उसमें परम आनंद है। ऐसे आनंद के वेदन सहित आत्मा का ज्ञान प्रगट होता है। आनंदरहित ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान नहीं है।

भाई, तुझे सुखी होना है ना ? सुख की उत्पत्ति तो तेरे आत्मा से होती है, इसलिए उपयोग को आत्मा में एकाग्र कर। चैतन्यसरोवर परम आनंद से भरपूर है; सिद्ध भगवंतों ने जो आनंद प्रगट किया है, वह आनंद इस चैतन्यसरोवर में भरा हुआ है; उस चैतन्यसरोवर को छोड़कर बाह्य में दौड़ेगा तो तुझे कहीं सच्ची शांति का जल नहीं मिलेगा। सच्ची शांति के लिए अंतर में अपने चैतन्यसरोवर में डुबकी लगा।

चैतन्यसुख का अनुभव करते ही ज्ञानी को ऐसा लगता है कि अहो! मेरा ऐसा अचिंत्य परम आनंद मुझमें ही होने पर अभी तक अपने सुख को भूलकर मैं दु:खी हुआ था। अहो! अब तो चैतन्यभगवान निजात्मगुणों के वैभव सहित अपने अंतर में स्फुरायमान हुआ है, सम्यग्दर्शन की अपनी अनुभूति में आत्मसंपत्ति ही प्रगट हुई है; मेरी संपत्ति मैंने अपने में देखी है; उसके परम आनंद का अनुभव करता हुआ मैं अब विभाव के विषफल का उपयोग नहीं करता, उसको अपने से भिन्न जानता हूँ।

अहो, ऐसी चैतन्य संपत्ति! वह धर्मात्मा की अनुभूति का ही विषय है; राग का यह विषय नहीं; राग से पार ऐसी जो निर्विकल्प समाधि, उसमें अपनी चैतन्य संपत्ति को ध्येय बनाने पर सम्यग्दर्शन तथा परम आनंद प्रगट होता है। पूर्व काल में एक समय भी ऐसी चैतन्य संपत्ति को मैंने नहीं जाना था; परंतु अब वह चैतन्य संपत्ति मेरी निर्विकल्प समाधि में प्रगट हुई है,

.....शेष पृष्ठ 10 पर

मोक्ष के लिए योगभक्ति

[महावीर निर्वाण मंगलदिन : वीर सं. २४९८ प्रारंभ : नियमसार, गाथा 138]

आज के दिन महावीरस्वामी मोक्ष को प्राप्त हुए थे। मोक्ष की आराधना कैसे हो ? उसकी यह बात है।

भाई, यह तेरी मुक्ति का मर्गा बताया जा रहा है; तेरे सुख की रीति बताई जा रही है। आत्मा के शुद्धस्वरूप में उपयोग लगाने से वीतरागी समरस प्रगट होता है, वही मोक्ष की भक्ति है, वह निश्चय योगभक्ति है, ऐसी भक्ति के द्वारा उत्तम पुरुष मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।

आत्मा को कहाँ लगाना ? कैसा अनुभव करना ? उसकी बात है। अज्ञानी अपने आत्मा को राग में लगाकर राग को ही भजता है, उसके बदले राग से भिन्न जो अति अपूर्व निरुपराग चैतन्यपरिणति है, उसमें आत्मा को एकाग्र करना, उसमें मोह-राग-द्वेषादि समस्त परभावों का अभाव है, विकल्प का अभाव है तथा निर्विकल्प समरस के घोलनरूप रत्नत्रयभाव उसमें वर्तते हैं। ऐसी अति, अपूर्व परिणति में आत्मा का परिणमन, वह मोक्ष के लिए योगभक्ति है—ऐसा इस सूत्र में कहा है।

अहो, कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि संत तो वीतरागी भगवंत थे, उनके द्वारा रचे गये सूत्र भी वीतरागी सूत्र हैं। उसमें कहते हैं कि हे भव्य ! मोक्ष के लिए अपने आत्मा को अपनी अति अपूर्व वीतराग चैतन्यपरिणति में लगा; उसमें आनंदमय समरस है, उसमें विकल्प नहीं है, राग नहीं है, दुःख नहीं है, ऐसी निर्विकल्प चैतन्यविलासरूप रत्नत्रय-परिणति में आत्मा को लगाकर अर्थात् आत्मा को उस रूप परिणमित करके महावीर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। इसलिए हे भव्य जीव ! हे महाजनो ! तुम भी अपने आत्मा को वीतरागी स्वपरिणति में जोड़कर परम वीतराग सुख प्रदान करनेवाली ऐसी योगभक्ति करो।

अहा, आनंदमय शांत चैतन्यधाम ! उसमें विकल्प का कोलाहल कैसा ? शांति के समुद्र में अशांति कैसी ? धर्मी को पर्याय-पर्याय में अपना

कारणपरमात्मा अभेद वर्त रहा है। कारणपरमात्मा को स्वयं में अभेद रखकर ही धर्मी का परिणमन वर्त रहा है, अर्थात् उसने स्वयं को राग से पृथक् करके अपनी शुद्ध-निर्विकल्प-आनंदमय-चैतन्यपरिणति में स्थापित किया है— इसका नाम उत्तम योगभक्ति, तथा यही मोक्षमार्ग! ऋषभ से लेकर महावीर तक के सभी तीर्थंकर भगवंत ऐसी योगभक्ति के द्वारा निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, अत: तुम भी ऐसी उत्तम योगरूप भक्ति करो।

अहा, वे भगवंत सर्व आत्मप्रदेशों में उत्पन्न आनंदरूपी परम सुधारस के पान से परितृप्त हुए। सम्यग्दर्शन हुआ, तब भी आत्मा सर्व प्रदेशों में आनंदमय परम सुधारस के पान से तृप्त-तृप्त हुआ है, और उसके फल में मोक्ष के अनादि-अनंत आनंदमय अनंत चैतन्यरस में आत्मा परितृप्त हुआ। मोक्ष का मार्ग तो आनंदमय ही है।

धर्मात्मा जानते हैं कि अहा, मेरा परम आनंदमय आत्मा जहाँ मेरे अनुभव में विराजमान है, वहाँ अब केवलज्ञान तथा मोक्षदशा भी मेरे निकट वर्तती है। अनंत काल के भवदुखों का अब अन्त आ गया है। सम्यग्दर्शन होते ही रागरहित चैतन्यशांति का वेदन हुआ है। शुद्ध द्रव्य-गुण का स्वीकार हुआ, वहाँ आत्मा शुद्धपर्यायरूप परिणमित हुआ अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों से शुद्धरूप आत्मा परिणमित हुआ है, राग के अन्धकार को दूर करके चैतन्य-दीप का प्रकाश प्रगट हुआ है; यही सच्ची दीपावली है। दीपावली में आत्मा ने स्वयं को परम आनंद की भेंट दी है।

आत्मा का स्वरूप सर्वथा अंतर्मुख है, उसे अपने में अपनी शुद्ध आनंदपरिणति का ही साथ है, अन्य किसी का उसे साथ नहीं है, राग तो बाहर रह जाता है। यह तो संतों के मार्ग का अमृत है। थोड़ा भी अमृत परम आनंद को प्रदान करता है और अनंत काल के दु:ख को मिटाता है। धर्मात्मा को जहाँ अंतर्मुख परिणाम हुए, वहाँ उसकी परिणति में अब निर्मलता ही बहती है, कारणपरमात्मा प्रभु उसकी दशा में विराजमान हैं, अब राग या भव का उसमें स्थान नहीं। भाई! तेरे आत्मा को ऐसे स्वभाव की ओर उत्साहित कर! अरे निजानंद से भरपूर ऐसे स्व-तत्त्व को भूलकर अन्यत्र कहीं भी

उल्लास करके एकाग्र हो जाए, वह अंतर्मुख कहाँ से होगा ? मुक्ति का मार्ग तो सर्वथा अंतर्मुख ही है।

भाई, मोक्ष के लिए तेरी शुद्धपरिणति ही तुझे अनुकूल है और रागादि प्रतिकूल है; अन्य कोई तुझे अनुकूल या प्रतिकूल नहीं है।

मोक्षमार्ग में तेरी जो अति-अपूर्व शांत परिणति है, वही तेरी सहचारी है, उस परिणति में ही तू कारणपरमात्मा विराजमान है। अहा, मैं कारणपरमात्मा जिसमें विराजमान हूँ, उसमें मोह-राग-द्वेष कैसे रहेंगे ? नहीं रह सकते। अपने आत्मा को शुद्धता में परिणमित किया वहाँ अब अशुद्धता है ही नहीं। इसी का नाम मोक्ष के लिये सच्ची योगभक्ति है। ऐसी भक्ति के द्वारा ही तीर्थंकर भगवान निर्वाण के महा आनंद को प्राप्त हुए हैं; अत: तू भी आत्मा को ऐसी योगभक्ति में लगा... तुझे भी महा आनंद सहित मोक्षमार्ग प्रगट होगा।

आत्मा में मोक्षमार्ग के दीपक प्रज्वलित हुए वही सच्ची दीपावली है

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-7 (नवम्बर-1971), वर्ष-27]

पृष्ठ 7 का शेष...

मैं अपने चैतन्यसुख.....

साक्षात् अनुभव में आ गयी है।

अहा, इस चैतन्य संपत्ति के सामने जगत की किसी भी संपत्ति का मूल्य नहीं है। जिसने अंतर की अनुभूति द्वारा ऐसा चैतन्य संपत्तिवान आत्मा प्राप्त किया, वही सच्चा लक्ष्मीवान है; जो बाह्य के संयोगों से बड़ाई लेना चाहें, वे तो सब दरिद्र हैं। भगवान! तू दरिद्र नहीं, दीन नहीं, तू तो चैतन्य संपत्ति से भरपूर भगवान है। सुख की संपत्ति तो तुझमें ही भरी हुई है। ज्ञान को अंतर्मुख करके अपने स्वरूप की समाधि द्वारा उसे जान... तेरा आनंदमय आत्मवैभव तीन लोक में सर्वश्रेष्ठ है, वह तेरी समाधि का विषय है-इसलिए अपने अंतर्मुख उपयोग में ही वह प्राप्त होता है; इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से उसकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिए अंतर के उपयोग द्वारा सुख-संपत्ति से भरपूर अपने 'चैतन्यधाम' में आनंद से निवास कर।●●

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-7 (नवम्बर-1971), वर्ष-27]

आत्मा समीप है

धर्मी को एक भी पर्याय में आत्मा दूर नहीं है

जिसे सुनकर मुमुक्षु को प्रमोद हो, ऐसे 'भावी तीर्थाधिनाथ' का उदाहरण देकर शुद्धदृष्टिवंत जीव का स्वरूप समझाते हुए मुनिराज कहते हैं कि—अहो, भावी तीर्थाधिनाथ को अपने समस्त परिणाम में अपना शुद्ध आत्मा समीप ही वर्तता है; शुद्धात्मा की सन्मुखता से वह अभिराम है—सुंदर है। जहाँ आत्मा की निकटता नहीं है, वहाँ सुंदरता नहीं है–सुख नहीं है। भाई, तुझे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–आनंद प्रगट करना हों तो तू भी तीर्थाधिनाथ की भाँति अंतर में आत्मा के समीप जा।

[नियमसार गाथा 127, कलश 212 पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन]

अहा, शुद्ध चैतन्यस्वभावी मेरा आत्मा! उसमें मुझे शुद्ध ज्ञान–आनंद का ही परिचय है, उसमें भव का परिचय नहीं है, भव के कारणरूप किन्हीं विभावों के साथ मेरे चेतनस्वभाव का परिचय नहीं है, संबंध नहीं है। मेरी आत्मानुभूति में मेरी शांति और आनंद के अनंतभाव भरे हुए हैं, परंतु रागादि परभाव तो उसमें किंचित् भी नहीं हैं। अंतर में आत्मा के ऐसे स्वभाव का अभ्यास करने से सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र एवं मोक्षरूप परिणमन होता है; परंतु भवरूप परिणमन नहीं होता। अपने सम्यक्त्वादि स्वभावरूप परिणमित होना, यह तो जीव का स्वभाव ही है; उस शुद्ध परिणाम में आत्मा स्वयं समीप है, उसमें रागादि की निकटता नहीं है, रागादि तो उससे दूर हैं और शुद्धस्वभाव उसमें अत्यंत निकट (तन्मय) है।

अरे जीव! शांत होकर अपने स्वतत्त्व को अंतर में देख तो सही, कैसा है तेरा चैतन्यतत्त्व! अपने चैतन्यतत्त्व के अनुभव में तुझे भवरहित

चैतन्यसुख दृष्टिगोचर होगा, भव और भव के कारणरूप समस्त विभाव तो चैतन्य से अत्यंत दूर हो गये हैं—पृथक् हो गए हैं।

अहा, जो पर्याय अंतर में चैतन्यस्वभाव के निकट आयी, वह पर्याय राग के निकट क्यों जाएगी ? जिस पर्याय में मोक्षसुख का अनुभव हुआ, उस पर्याय में भवदु:ख का परिचय क्यों रहेगा ? धर्मी कहता है कि मेरे आत्मा में भव का परिचय नहीं है; चिदानंदस्वभाव के परिचय में समतारूप सामायिक है अर्थात् मोक्षमार्ग है, शांति का वेदन है।

चैतन्य जिसका चमत्कार है, अनंत चैतन्यभावों से जो गंभीर है, ऐसा मेरा परमतत्त्व स्वानुभूति में प्रकाशित हुआ है, वह जयवंत है; रागादि भावों का परिचय उसमें से छूट गया है।

हे जीव! चेतना को जागृत करके ऐसा पुरुषार्थ कर कि एक क्षण में चिदानंदस्वभाव में उतर जाए और समस्त परभावों से पृथक् हो जाए। तेरा स्वभाव शुद्धतारूप परिणमित होने का है और उसका यह अवसर है। शुद्धतत्त्व को जानने से शुद्धपरिणमन होता है, वह सामायिक है, उसमें आत्मा की प्राप्ति है। अपनी टंकोत्कीर्ण निज महिमा में लीन ऐसे शुद्धतत्त्व को सम्यग्दृष्टि साक्षात् जानता है। तीर्थंकर-गणधर-मुनिवर-संतों के हृदय में जो सदा स्थित है, ऐसा परम महिमावंत चैतन्यतत्त्व मुझे भी अपनी अनुभूति में गोचर होता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि अनुभव करता है। स्वयं अपने को प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही मेरा स्वभाव है। ऐसे अपने आत्मा को एक ओर रख देने से कभी कल्याण नहीं हो सकता। अपना महान तत्त्व कैसा है, उसे ज्ञान में अत्यंत समीप लाकर, स्वानुभवगोचर करके अपूर्व कल्याण होता है। आत्मा कोई अगोचर वस्तु नहीं है, सम्यग्दृष्टि के स्वानुभव में वह आनंदसहित गोचर होता है।

धर्मात्मा के सर्व निर्मलभावों में अपना शुद्ध आत्मा ही संनिष्ठ है; स्वपर्याय में आत्मा ही सम्यक्रूप से स्थित है; पर्याय-पर्याय में आत्मा ही उसे समीप वर्तता है। उसकी एक भी पर्याय में आत्मा दूर नहीं है परंतु सर्व

पर्यायों में आत्मा समीप ही है। रागादिभाव उससे दूर हैं-भिन्न हैं। अरे जीव! तेरा आत्मा तुझमें ही अत्यंत निकट है, तथापि उसे दूर समझकर तूने राग से मित्रता की है; परंतु राग तो तेरे स्वभाव से दूर है। चेतन में आत्मा की ही समीपता है और रागादिकभाव दूर हैं; इसलिए अंतरंगदृष्टि द्वारा आत्मा को ही समीप कर। परिणाम को आत्मा में तन्मय करके आनंद का अनुभव कर। ऐसा अनुभव करने पर सर्व परभाव लोप हो जायेंगे और भगवान आत्मा परम आनंदसहित प्रगट होगा।

*** 'चेतनावंत' ज्ञानी.... उसकी सच्ची भक्ति ***

धर्मात्मा को एक भी पर्याय में आत्मा दूर नहीं है; उसने आत्मा के साथ परिणति की डोरी बाँधी है और राग के साथ संबंध तोड़ दिया है। उसकी चेतना की एक भी पर्याय ऐसी नहीं है कि राग में तन्मय हो, उसकी चेतना राग से सर्वथा भिन्न चैतन्यभावरूप ही वर्तती है।—ऐसी चेतना को पहिचाने —जाने, तब धर्मी को पहिचाना कहा जाता है। जिस प्रकार केवलज्ञानी भगवान की ज्ञानचेतना राग से सर्वथा भिन्न है, उसी प्रकार साधक धर्मात्मा की जो ज्ञानचेतना है, वह भी राग से सर्वथा भिन्न है, परभाव के किसी भी कण को वह अपने में नहीं मिलाती; ऐसी चेतनास्वरूप से अपना स्पष्ट वेदन हो, तब भेदज्ञान हुआ कहा जाता है तथा वह आत्मा ज्ञानचेतनास्वरूप होकर मोक्षमार्गी हुआ कहा जाता है। ज्ञानी की पहिचान राग द्वारा नहीं, परंतु ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञानी की पहिचान होती है। ऐसी पहिचान करे, तब ज्ञानी को सच्ची पहिचान और सम्यग्दर्शनादि होते हैं।

*** शांतरस के कुण्ड में स्नान करने से भवरोग का नाश होता है ***

आत्मा अपने परमानंदरूपी अद्वितीय अमृत से भरपूर है। ऐसे आत्मा को आनंदभक्ति से परिपूर्ण परम शांतरसरूपी जल द्वारा स्नान कराओ! अन्य कल्पना-जाल का क्या काम है ?

अहा, मेरे भगवान ने जैसे आत्मा का अनुभव करके प्रगट किया, वैसा ही आत्मा मैं हूँ—इस प्रकार अंतर में स्वसन्मुख अनुभूति के आनंदमय

फव्वारे से आत्मा को स्नान कराओ, आत्मा को प्रशमरस में डुबाओ। आत्मा चैतन्यसमुद्र है, वह स्वयं अपने में ही मग्न होकर अपने शांत चैतन्यरस का पान करता है; जिस प्रकार शारीरिक रोग को दूर करने के लिए लोग राजगृही आदि के गरम पानी के कुण्डों में स्नान करते हैं, उसी प्रकार हे जीव! आत्मा के कषायादि भवरोग को मिटाने के लिए तू अपने अंतर में भरे हुए परम शांत चैतन्यकुण्ड में स्नान कर; तेरे सब रोग दूर हो जाएँगे।

धर्मात्मा जानता है कि मैं अपनी निर्मल पर्याय के समीप जा रहा हूँ... राग से दूर होता हुआ अपनी चेतना परिणति में एकाग्र होता हूँ।

श्रीगुरु का उपदेश भी यही है कि—अपने परिणाम में तू अपने चैतन्यस्वभावी आत्मा को ही मुख्य रख; उसी को समीप रख और उसके अतिरिक्त अन्य सबको दूर कर दे। अपने में शुद्ध आत्मतत्त्व की आनंदमय अनुभूति हुई, वही परम गुरुओं का प्रसाद है। अहो, परम गुरुओं ने प्रसन्न होकर हमें ऐसे शुद्धात्मा का प्रसाद दिया; उसके अनुग्रह द्वारा हमें जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश मिला, उससे हमें स्वसंवेदनरूप आत्मवैभव प्रगट हुआ।

* भावी तीर्थाधिनाथ का उदाहरण देकर समझाते हैं *

अहा, जो भावी तीर्थाधिनाथ हैं, भवभय को हरनेवाले हैं और रागरहित होने से अभिराम हैं—सुंदर हैं, ऐसे शुद्धदृष्टिवंत भावी तीर्थाधिनाथ को अपने समस्त स्वसन्मुख परिणाम में अपना शुद्ध आत्मा ही ऊर्ध्व है, वही मुख्य है, वही समीप है, इसलिए उन्हें सहज समता साक्षात् वर्तती है। भावी तीर्थनायक के उत्कृष्ट उदाहरण द्वारा सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों की शुद्धदृष्टि में कैसा शुद्धात्मा वर्तता है, वह समझाया है। धर्मात्मा को समस्त परिणमन से अपना निरंजन कारणपरमात्मा ही सदा निकट है। परमगुरु के प्रसाद से ऐसे कारणपरमात्मा को स्वयं प्राप्त किया है—अनुभव में लिया है। श्रीगुरु के उपदेश में जैसा शुद्ध आत्मस्वरूप बतलाया, वैसा समझकर स्वयं प्रगट किया अर्थात् निर्मल पर्याय प्रगट करके उसमें स्वयं स्थित हुआ, रागादि

समस्त परभावों से पृथक् हुआ, दूर हुआ। इस प्रकार भावी जिन-भगवंत निजस्वभाव के समीप और परभावों से पराङ्मुख हुए, उन्हें सदा वीतरागी समताभावरूप स्थिर सामायिक है; सामायिकभावरूप अपनी निर्मल दशा में वह आत्मा सदा स्थिर रहता है; इसलिए भगवान के शासन में उस आत्मा की ही सामायिक कही है।

जहाँ अपना शुद्धात्मा समीप नहीं है, शुद्धात्मा जिसकी दृष्टि में नहीं आया है, वह आत्मा को दूर रखकर आत्मा को भूलकर चाहे जो करे, परंतु उसे शुद्धता नहीं होती, सामायिक नहीं होती, चारित्र नहीं होता, श्रद्धा-ज्ञान भी नहीं होते;—एक भी धर्म उसे नहीं होता। आत्मा को अपना स्वज्ञेय बनाये बिना सब व्यर्थ है, उसके बिना बाह्य जानकारी या शुभ आचरण, वे कोई शांति प्रदान नहीं करेंगे। शांति देनेवाला अपना आत्मा है, उसके निकट तो वह जाता नहीं है तो उसे शांति कहाँ से मिलेगी ?

व्यवहार के परिणाम के समय भी धर्मी को उसमें निकटता-तन्मयता नहीं है, उस समय उसकी चेतना तो उस व्यवहार के राग से दूर ही वर्तती है और अपने शुद्ध परमतत्त्व के समीप ही वर्तती है। धर्मी की चेतना में अपना स्वभाव ही समीप है और राग दूर है—पृथक् है। जिसे चैतन्य की निकटता हुई है—शुद्ध परिणति में भगवान आत्मा अनुभव में आया है; ऐसे शुद्धदृष्टिवंत जीव को ही व्यवहार संयमादि सच्चे होते हैं। शुद्ध आत्मा जिसकी दृष्टि में नहीं वर्तता और मात्र राग ही जिसकी परिणति में तन्मय वर्तता है; ऐसे अज्ञानी को तो व्यवहार भी सच्चा नहीं होता। उसे जो अपना आत्मा दूर है, अर्थात् अनुभूति में नहीं आता।

* मेरा आत्मा मुझे दूर नहीं है *

अरे, मैं स्वयं चैतन्यप्रभु, मैं अपने से दूर क्यों होऊँगा ? आत्मा स्वयं अपने समीप ही है, स्वयं अपने स्वभाव में ही सत् है।—ऐसे आत्मा में जिसके परिणाम तन्मय हैं, उसी को धर्म है; जिसके परिणाम अपने आत्मा में तन्मय नहीं हैं अर्थात् जो आत्मा राग से भिन्न चेतनारूप परिणमित नहीं

हुआ है और रागादि परभाव में तन्मयभाव से वर्तता है, उसे धर्म नहीं है, शांति नहीं है, सामायिक नहीं है। धर्मी तो कहता है कि मेरी पर्याय-पर्याय में मेरे चैतन्यप्रभु का अमृत बरस रहा है, चैतन्यरस के समुद्र में ही मेरी सब पर्यायें मग्न हैं, मेरी कोई पर्याय राग में तन्मय नहीं है। मेरा आत्मा राग से भिन्न चेतनाभावरूप ही परिणमित हो रहा है।—इस प्रकार जिसने चैतन्यप्रभु को समीप रखा और जो स्वयं चैतन्यप्रभु के समीप गई, उस पर्याय में राग रह नहीं सकता, वह पर्याय राग से पृथक् हो गई; इसलिए वीतरागभाव से वह सुंदर सुशोभित हुई। ऐसी शुद्ध आत्मदृष्टिवाले जीव अभिराम हैं, सुंदर हैं; मनोहर हैं। अहा, तीर्थंकर होनेवाले आत्मा ऐसी शुद्धात्मदृष्टि द्वारा मनोहर हैं, भवभय को हरनेवाले हैं।

जहाँ आत्मा की समीपता है, आत्मा में एकाग्रता है, वहीं सच्ची सामायिक है। जहाँ आत्मा नहीं है, वहाँ सामायिक कैसी? जिस परिणाम में अपने शुद्ध आत्मा की अनुभूति नहीं है उसमें सामायिक कैसी? उसमें वीतरागता कैसी? उसमें सुख कैसा? उसमें धर्म कैसा? धर्मी को अपनी समस्त पर्यायों में, ज्ञान में-श्रद्धा में-चारित्र में-आनंद में सदा अपने शुद्ध आत्मा प्रत्यक्ष वर्तता है, एक समय भी वह वह दूर नहीं है।

*** धन्य! भावी तीर्थाधिनाथ! ***

जिसमें शुद्ध आत्मा समीप है, ऐसी सामायिक के वर्णन में भावी तीर्थाधिनाथ को याद करके मुनिराज कहते हैं कि अहो, तीर्थंकरों को उस भव में दर्शन और चारित्र दोनों अप्रतिहत होते हैं; ऐसे भावी तीर्थंकर को तथा उन जैसे शुद्धदृष्टिवंत सर्व जीवों को ज्ञान में-श्रद्धा में-चारित्र में-आनंद में इस प्रकार सर्व भावों में अपना शुद्ध आत्मा ही समीप है, वही शुद्ध परिणाम में तन्मय वर्तता है। आत्मा स्वयं अपने निर्मल परिणाम में तन्मय-एकाकार वर्तता है, इसलिए वही समीप है, और रागादिभावों में आत्मा तन्मय नहीं वर्तता, इसलिए रागादि से वह दूर है, भिन्न है।

धर्मात्मा को आत्मा की निकटता एक क्षण भी नहीं छूटती और जहाँ

आत्मा समीप है अर्थात् आत्माभिमुखभाव है, वहाँ समता ही है, वीतरागता ही है। ऐसा वीतरागी कार्य, वही नियमसार है, वही मोक्ष का मार्ग है। किसकी समीपता में आनंद होता है ?—तो कहते हैं कि आत्मा स्वयं सहज आनंदस्वरूप है, इसलिए अंतर्मुख होकर आत्मा की समीपता में ही आनंद का वेदन होता है।

हे जीव! सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट करना हो तो आत्मा के समीप जा; सम्यग्ज्ञान पर्याय प्रगट करना हो तो आत्मा के समीप जा; आनंदपर्याय प्रगट करना हो तो आत्मा के समीप जा। परम समभावरूप सामायिक करना हो तो आत्मा के समीप जा। भावी तीर्थाधिनाथ एवं सर्व शुद्धदृष्टिवंत जीव इस प्रकार आत्मा के समीप जाकर, आत्मा को मुख्य रखकर, उसमें एकाग्रता द्वारा श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र और सामायिक प्रगट करते हैं।

अहा, ऐसी शुद्धदृष्टिवान यह भावी तीर्थाधिनाथ शुद्धद्रव्य में अभेद पर्याय द्वारा अभिराम हैं, सुशोभित हैं, शुद्धद्रव्य में अभेद परिणति द्वारा राग का अभाव हुआ है, इसलिए वे वीतरागरूप से सुशोभित हैं—सुंदर हैं—मनोहर हैं—अभिराम हैं और भव के भय को हरनेवाले हैं। अरे, भगवान आत्मा जहाँ अनुभूति में निकट विराजमान हो, वहाँ भवदु:ख कैसे ? और भय कैसा ? भगवान आत्मा तो भव के भय को हरनेवाला है।

मैं तो चेतनामय आत्मा हूँ; ऐसी शुद्धदृष्टि धर्मी को कभी छूटती नहीं है। प्रत्येक कार्य के समय, प्रत्येक परिणाम के समय आत्मा की ही ऊर्ध्वता रहती है, आत्मा ही मुख्य रहता है; रागादि से आत्मा ऊर्ध्व रहता है, भिन्न रहता है। ऐसी दृष्टि से शुद्धदृष्टिवंत जीव शोभायमान है। अहा! ऐसी शुद्धदृष्टिवंत जीव, वह तो भविष्य का भगवान है; भावी तीर्थाधिनाथ अप्रतिहतभाव से आत्मा को समीप ही रखकर सामायिक द्वारा मोक्ष को साधता है। प्राकृतिक आत्मा आनंदमय है, उसकी समीपता होने से आनंद का वेदन करता-करता वह आत्मा मोक्ष में जाता है। किसी धर्मात्मा को अपने धर्मपरिणाम में आत्मा दूर नहीं होता। जितने धर्मपरिणाम हैं, उन सब

परिणामों में आत्मा स्वयं तन्मय वर्तता है, आत्मा स्वयं उस स्वरूप है। सम्यग्दर्शन में, ज्ञान में, आनंद में सर्व परिणाम में संपूर्ण आत्मा वर्तता है, दूर नहीं रहता, पृथक् नहीं रहता। प्रत्येक पर्याय में धर्मी को समतारस का संपूर्ण चैतन्यपिण्ड प्रत्यक्ष वर्तता है।—ऐसे धर्मात्मा के भाव में सदा सामायिक है।

धर्मात्मा की ज्ञानदशा में सहज परमानंदरूपी अमृत की बाढ़ आयी है, संपूर्ण ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा स्वयं परम आनंदरूप से उल्लसित हुआ है; उसमें अब राग-द्वेष कैसे ? अशांति कैसी ? ...आत्मा के निकट जाकर महा आनंद के वेदन में जो पर्याय निमग्न हुई, उसमें अब राग-द्वेषादि विकृति नहीं होती, वह तो परम शांत है; ऐसे भाव का नाम सामायिक है और वही परमानंद का पंथ है, वह स्वयं आनंदरूप है, मोक्ष के परम आनंद को साधता है।

विकल्प ज्ञान के स्वभाव में हैं ही नहीं, ज्ञान के स्वभाव में आनंद का पूर है, समभाव है, परंतु उसमें राग-द्वेषादि विकृति नहीं है। आत्मस्वभाव के अनंत भावों का समरस ज्ञान में समा जाता है; ऐसा समरसी आत्मा है, उसके अनुभव द्वारा सामायिक प्रगट होती है। पर्याय अंतर्मुख होकर आत्मा के शुद्धचैतन्यरस के पान में तत्पर है, निर्विकल्पता से चैतन्य का आनंदरस पीने में ही वह तल्लीन है; अन्य किसी परभाव में वह पर्याय अब नहीं लगती। परम वीतरागी सुख के अमृत का स्वाद जिसने चखा, वह विकार का विषैला स्वाद लेने क्यों जाएगा ? अंतर्मुख ज्ञान का स्वाद और विकल्प का स्वाद—इन दोनों के बीच अमृत और विष जितना अंतर है। ज्ञान का स्वाद तो परम शांतरसमय है और विकल्प का स्वाद आकुल-अशांत है। धर्मी जीव ज्ञान द्वारा आत्मा के आनंद का रसपान करता है, वह तीर्थंकरों का अनुयायी है। तीर्थाधिनाथ का जो सुंदर मार्ग-उसमें वह चल रहा है, सुशोभित हो रहा है।

धन्य हैं तीर्थाधिनाथ और उनका सुंदर मार्ग!

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-7 (नवम्बर-1971), वर्ष-27]

सम्यग्दर्शन के आठ अंग की कथा

सम्यक्तयुत आचार ही संसार में एक सार है,
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ-सौ बार है।
उनके गुणों के कथन से गुण ग्रहण करना चाहिए,
अरु पापियों का हाल सुनकर पाप तजना चाहिए॥

निर्विचिकित्सा-अंग में प्रसिद्ध उदायन राजा की कथा

[पहली नि:शंक अंग में प्रसिद्ध अंजनचोर की, दूसरी नि:कांक्ष अंग में प्रसिद्ध सती अनंतमती की कथा आपने पढ़ी; अब तीसरी कथा आप यहाँ पढ़ेंगे।]

सौधर्म-स्वर्ग में देवों की सभा लगी हुई है; इन्द्र महाराज देवों को सम्यग्दर्शन की महिमा समझा रहे हैं। हे देवो! सम्यग्दर्शन में तो आत्मा का कोई अद्‌भुत सुख है। जिस सुख के समक्ष इस स्वर्गसुख की कोई गिनती नहीं है, इस स्वर्गलोक में मुनिदशा नहीं हो सकती, परंतु सम्यग्दर्शन की आराधना तो यहाँ भी हो सकती है।

मनुष्य तो सम्यक्त्व की आराधना के अतिरिक्त चारित्रदशा भी प्रगट करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। जो जीव नि:शंकता, नि:कांक्षा, निर्विचिकित्सा आदि आठ अंगों सहित शुद्ध सम्यग्दर्शन के धारक हैं, वे धन्य हैं। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवों की यहाँ स्वर्ग में भी हम प्रशंसा करते हैं।

वर्तमान में कच्छ देश में उदायन राजा ऐसे सम्यक्त्व से शोभायमान हैं तथा सम्यक्त्व के आठों अंग का पालन कर रहे हैं। जिसमें निर्विचिकित्सा अंग के पालन में वे बहुत दृढ़ हैं। मुनिवरों की सेवा में वे इतने तत्पर हैं कि चाहे जैसा रोग हो तो भी वे रंचमात्र जुगुप्सा नहीं करते तथा ग्लानि रहित

परमभक्ति से धर्मात्माओं की सेवा करते हैं। उन्हें धन्य है! वे चरमशरीरी हैं।

राजा के गुणों की ऐसी प्रशंसा सुनकर वासव नाम के एक देव को यह सब प्रत्यक्ष देखने की इच्छा हुई और वह स्वर्ग से उतरकर मनुष्यलोक में आया।

❀ ❀ ❀

उदायन राजा एक मुनिराज को भक्तिपूर्वक आहारदान के लिए पड़गाहन कर रहे हैं—पधारो... पधारो... पधारो! रानी सहित उदायन राजा नवधाभक्तिपूर्वक मुनिराज को आहारदान देने लगे।

अरे, यह क्या? कई लोग तो वहाँ से दूर भागने लगे, और बहुत से मुँह के आगे कपड़ा लगाने लगे; क्योंकि इन मुनि के काले-कुबड़े शरीर में भयंकर कुष्ठ रोग था और उससे असह्य दुर्गंध निकल रही थी; हाथ-पैर की उंगलियों से पीव निकल रही थी।

—परंतु राजा को इसका कोई लक्ष्य नहीं था। वह तो प्रसन्नचित्त होकर परम भक्तिपूर्वक एकाग्रता से मुनि को आहारदान दे रहे थे, और अपने को धन्य मान रहे थे—कि अहा! रत्नत्रयधारी मुनिराज का हमारे घर आगमन हुआ! इनकी सेवा से मेरा जीवन सफल हुआ है।

इतने में अचानक मुनि का जी मचलाया और उल्टी हो गई; और वह उल्टी राजा-रानी के शरीर पर गिरी। दुर्गंधित उल्टी गिरने पर भी राजा-रानी को न तो ग्लानि उत्पन्न हुई और न मुनिराज के प्रति रंचमात्र तिरस्कार ही आया; बल्कि अत्यंत सावधानी से वे मुनिराज के दुर्गंधमय शरीर को साफ करने लगे और विचारने लगे कि अरेरे! हमारे आहारदान में जरूर कोई भूल हो गई है जिसके कारण मुनिराज को यह कष्ट हुआ, हम मुनिराज की पूरी सेवा न कर सके।

अभी तो राजा ऐसा विचार कर रहे हैं कि इतने में वे मुनि अचानक अदृश्य हो गए और उनके स्थान पर एक देव दिखाई दिया। अत्यंत प्रशंसापूर्वक उसने कहा : हे राजन्! धन्य है तुम्हारे सम्यक्त्व को तथा धन्य है तुम्हारी निर्विचिकित्सा को! इन्द्र महाराज ने तुम्हारे गुणों की जैसी प्रशंसा की थी, वैसे

ही गुण मैंने प्रत्यक्ष देखे हैं। हे राजन्! मुनि के वेश में मैं तुम्हारी परीक्षा करने आया था। धन्य है आपके गुणों को... ऐसा कहकर देव ने नमस्कार किया।

वास्तव में मुनिराज को कोई कष्ट नहीं हुआ—ऐसा जानकर राजा का चित्त प्रसन्न हो गया, और वे बोले, हे देव! यह मनुष्य शरीर तो स्वभाव से ही मलिन है, तथा रागादि का घर है। अचेतन शरीर मैला हो, उससे आत्मा को क्या? धर्मी का आत्मा तो सम्यक्त्वादि पवित्र गुणों से शोभायमान है। शरीर की मलिनता को देखकर जो धर्मात्मा के गुणों के प्रति अरुचि करता है, उसे आत्मदृष्टि नहीं है तथा देहदृष्टि ही है। अरे, चमड़े के शरीर से ढँका हुआ आत्मा अंदर सम्यग्दर्शन के प्रभाव से शोभायमान है, वह प्रशंसनीय है।

उदायन राजा की ऐसी श्रेष्ठ बात सुनकर देव बहुत प्रसन्न हुआ, और उसने राजा को कई विद्याएँ दीं तथा अनेक वस्त्राभूषण दिये; परंतु राजा को उन सबकी कहाँ इच्छा थी? वे तो समस्त परिग्रह का त्याग करके वर्द्धमान भगवान के समवसरण में गये और मुनिदशा अंगीकार की तथा केवलज्ञान प्रगट करके मोक्ष को प्राप्त हुए। सम्यग्दर्शन के प्रताप से वे सिद्ध हुए... उन्हें मेरा नमस्कार हो!

[यह छोटी सी कथा हमें ऐसा बोध देती है कि धर्मात्मा के शरीरादि को अशुचि देखकर भी उनके धर्म के प्रति ग्लानि मत करो तथा उनके सम्यक्त्वादि पवित्र गुणों का बहुमान करो।]

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-7 (नवम्बर-1971), वर्ष-27]

वैराग्य समाचार

सनावद : श्रीमती पूर्वा जैन, सनावद का आकस्मिक निधन हो गया। आप श्री राहुल जैन की धर्मपत्नी एवं श्री राजाभाई सनावद की पुत्रवधु थीं। आपका बड़ा पुत्र मंगलार्थी अरिंदम जैन है। आप बहुत ही धार्मिक विचार ही महिला थीं। गहरी स्वाध्यायी एवं तत्त्व रुचिवन्त थीं। आपके आकस्मिक निधन पर सम्पूर्ण सनावद एवं मुमुक्षु समाज को कष्ट हुआ है। इस वैराग्य की घड़ी में तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार, मंगलार्थी अरिंदम के परिवार के साथ सदा खड़ा है। दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मुक्तिमार्ग को प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त हो – ऐसी भावना है।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री जिनचन्द्रस्वामी

आचार्य अर्हद्बलि तक भगवान महावीर का शासन मूलसंघ के रूप में अक्षुण्ण चलता रहा व उनके गुरु लोहाचार्य तक तो अंगश्रुतज्ञान का प्रवाह चलता रहा, बाद में अंग के कुछ-कुछ अंशों का ज्ञान रहा। इस तरह आचार्य अर्हद्बलि के काल तक में मुनि भगवंतों के श्रुतज्ञान की क्रमशः हानि होते जाने से यतियों में कुछ पक्षपात की गंध देखकर, पक्षपात की स्थिति समाप्त करने हेतु, अर्हद्बलि आचार्य ने पंचवर्षीय युग-प्रतिक्रमण के समय नन्दिसंघ आदि संघों की स्थापना की थी। उसमें नन्दिसंघ के प्रथम आचार्य माघनन्दी के शिष्य के रूप में आचार्य जिनचन्द्रजी का नाम आता है। वैसे तो जिनचन्द्र नामक कई आचार्य हु हैं, पर उनमें से सर्वोच्च नाम आचार्य माघनन्दि के शिष्य जिनचन्द्रजी का है।

आपके काल में ही श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी एक जिनेन्द्र साधु भी हुए हैं, पर ये इनसे भिन्न हैं। आप बहुश्रुत पारगामी थे। आपके विषय में विशेष कोई जानकारी नहीं है, न आपका रचित कोई शास्त्र उपलब्ध है। पर आप भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु होने से व नन्दिसंघ की पट्टावलि में उग्र तपश्चर्यावंत तपस्वी के रूप में आपका नाम बड़े आदर से लिया गया है। आप वी. नि. 614 से 654 (ई.स. 87-127) के अरसे में वीरप्रभु के समीचीन शासन को चन्द्र की भाँति उद्योत फैलानेवाले होने से आपका 'जिनचन्द्र'—नाम सार्थक था। सकल संघ में आप अपने गुरु माघनन्दि आचार्य के अत्यंत विश्वासपात्र थे। अतः माघनन्दि आचार्य ने स्वयं अपने हाथों से वी. नि. 614 (ई.स. 87) में आपको संघ के पट्ट पर आसीन कर दिया व आपका संघ आपकी छत्र-छाया से ज्ञान व चारित्र में उन्नत होने लगा। इस घटना के कुछ वर्ष पश्चात् ही 11 वर्ष की छोटी उम्र में भगवान कुन्दकुन्ददेव ने आपसे दीक्षा धारण की।

वैसे पट्टावलियों अनुसार आपका काल वी. नि. 614-654 (ई.स. 87-127) इतिहासकार मानते हैं। जो कुछ भी हो, आप ई.स. 127 के पूर्व के आचार्य हैं।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव के दाता श्री जिनचंद्राचार्य भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

भगवान श्री आचार्यदेव
श्री कुन्दकुन्दस्वामी

दिगम्बर जैनाचार्यों में कुन्दकुन्दाचार्य का नाम सर्वोपरि है। मूर्तिलेखों, शिलालेखों, ग्रंथ प्रशस्तिलेखों एवं पूर्वाचार्यों के संस्करणों में कुन्दकुन्दस्वामी का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिखा मिलता है।

मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमो गणी।
मंगलम् कुंदकुंदर्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

इस मंगल पद के द्वारा भगवान महावीर और उनके प्रधान गणधर गौतमस्वामी के बाद कुन्दकुन्दस्वामी को मंगल कहा गया है। इनकी प्रशस्ति में कविवर वृन्दावनदासजी लिखते हैं—

हुए न, हैं न, होंहिगे मुनिंद कुन्दकुन्द से॥

इस तरह भगवान महावीर के निर्वाण पश्चात् केवली, श्रुतकेवली, अंगों व पूर्वों के ज्ञाता, अंगों व पूर्वों के एकदेश ज्ञाता—ऐसे अनेकानेक महान-महान आचार्य दिगम्बर जिनशासन में हुए हैं, फिर भी गौतम गणधर के पश्चात् उन किन्हीं आचार्यवर का नाम न लेकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का नाम ही मंगलाचरण में लिया जाता है—जिससे यह सूचित होता है, कि ये धर्म स्तंभरूप, महासमर्थ आचार्यवर थे। आपने ही जिनशासन की आधारशिला-स्वरूप, परमामृतमय अध्यात्म-ज्ञान से जिनशासन को इस कलिकाल में अक्षुण्णतया टिका रखा है। यह ही आपका महान उपकार है। आपके पश्चातवर्ती आचार्य ने आपको 'कलिकाल सर्वज्ञ' भी स्वीकृत किया है। द्रव्यानुयोग के प्रधान ग्रंथ रचकर वीर शासन का शुद्धात्मानुभूति प्रधान मोक्षमार्ग व तीर्थंकरदेवों द्वारा प्ररूपित उत्तमोत्तम सिद्धान्तों को विच्छेद होने से आपने ही बचा लिया है, जिससे इस दुषमकाल में भी मोक्षमार्ग को अक्षुण्णरूप से आपने ही टिकाया है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के बारे में यह किवदंती है कि पूर्वभव में एक ग्वाला सेठ के यहाँ रहता था और गाँवों को चराने ले जाता था। गायों को चराते समय, उसने वहाँ एक मुनिराज भगवंत को ध्यान में बैठा देखा। प्रथम तो उसे लगा, कि यह कोई दरिद्री है, परंतु जब मुनिराज के दर्शन करने राजा-महाराजा-श्रेष्ठीवर्ग को आते

देखकर उसे मुनिराज में कोई अद्‌भुत माहात्म्य लगा। अत: वह प्रतिदिन जंगल में गायों के चरते समय मुनिराज के चरणों में बैठ जाता और मुनिभगवंत की मुद्रा मेढ़े की भाँति देखा ही करता। उसे मुनिराज की वीतरागी मुद्रा देखकर अतिशय बहुमान आने लगा। मुनिभगवंत को इस तरह बड़े भाव से निरखा करता था।

किसी एक दिन उस जंगल में आग लगी। वृक्ष सब जल गये। आग शांत होने पर वह उसी वृक्ष के पास आया, जहाँ वह मुनिराज को अक्सर देखा करता था। उसने आश्चर्य से देखा, कि उस वृक्ष को कुछ नहीं हुआ था। वृक्ष में रखे हुए ताड़पत्र पर लिखित पत्रों को वैसा ही पाया। उसको पढ़ना नहीं आता था। अत: किसी योग्य व्यक्ति को दूँगा, यह सोच वह उन ताड़पत्रों को बड़े श्रद्धाभाव से लेकर घर पर आ गया। उसे घर के एक आले में बड़े आदर से रखा। प्रतिदिन उसकी भक्ति, आरती, पूजा, अर्चना आदि करने लगा।

किसी एक दिन कोई महामुनिरज उस सेठ के घर आहार हेतु पधारे थे। सेठ ने मुनिभगवंत को नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान देने के पश्चात् मुनिराज ने सेठ को कुछ प्रयोजनभूत तत्त्व का उपदेश दिया। उस समय ग्वाला भी वहीं था। उसने मुनिभगवंत का बड़ी श्रद्धा से आहारदान देखा। उपदेश सुना। तब उस ग्वाले ने अपने घर में विराजित ताड़पत्रों को लाकर मुनिभगवंत को दिये और कहा, 'भगवन! मैं इसे नहीं पढ़ सकता, आप इसे पढ़ सकेंगे, ऐस कहकर सारा वृतांत सुनाया।'

ऐसे मुनिराज व जिनवाणी के प्रति बड़े आदर, श्रद्धावंतता के फलस्वरूप वही ग्वाला दूसरे भव में उसी सेठ के यहाँ पुत्ररत्न के रूप में जन्मा। वह ग्वाला और कोई नहीं, पर अपने महान आचार्यवर कुन्दकुन्दाचार्यदेव थे। पूर्वभव में मुनिभगवंत तथा जिनवाणी की श्रद्धाभक्ति के फलस्वरूप उन्हें श्रुत की अपूर्व लब्धि प्राप्त हुई थी।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी की जयघोषणा का मुख्य कारण उनके द्वारा प्रतिपादित वस्तुतत्त्व का, विशेषतया आत्मतत्त्व का विशद वर्णन है। स्वानुभूति के स्तंभ समान समयसारादि ग्रंथों में उन्होंने पर से भिन्न तथा स्वकीय गुण-पर्यायों से अभिन्न आत्मा का जो वर्णन किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने उन ग्रंथों में

अध्यात्मधाररूप जिस मंदाकिनी को प्रवाहित किया है, उसके शीतल और पावन प्रवाह को अवगाहनकर भवभ्रमण श्रांत मुमुक्षुवृंद शाश्वत शांति को प्राप्त करते हैं। उनके शास्त्र साक्षात् गणधरदेव के वचन जैसे ही प्रमाणभूत माने जाते हैं। उनके पश्चात् हुए ग्रंथकार आचार्यों ने अपना कथन सिद्ध करने के लिए कुन्दकुन्दाचार्यदेव के शास्त्रों का प्रमाण अनेक जगह दिया है, जिससे उनका कथन निर्विवाद सिद्ध होता है और उनकी परंपरा का कहलाने में पश्चातवर्ती आचार्य अपना गौरव अनुभवते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्दाचार्यदेव के विषय में एक ऐसी भी कथा चलती है, कि आपको विदेहक्षेत्रस्थ सीमंधर प्रभु का बहुत ही विरह महसूस हुआ था। इस संदर्भ में सीमंधर प्रभु की दिव्यध्वनि में 'सद्धर्मवृद्धिः अस्तु' आया था। सभा में लोगों को आश्चर्य होता है कि यह संधिहीन ध्वनि परिषद में क्यों आयी ? उस समय वहाँ बैठे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के कोई पूर्वभव के मित्रदेव भरत में आये थे। मद्रास से 80 मील दूर पोन्नूर पर्वत है। वहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ध्यान में बैठे थे। देव उन्हें सीमंधर भगवान के समवसरण में ले जाते हैं।

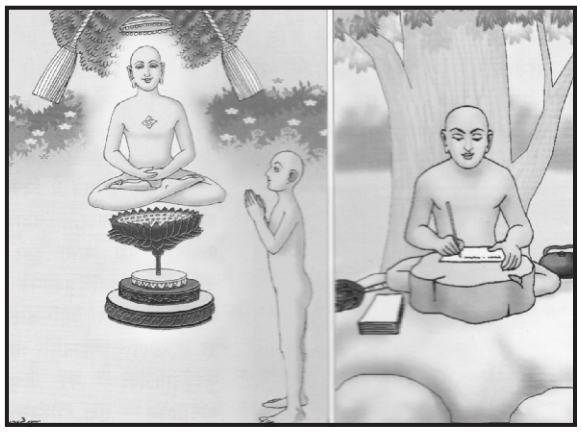

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव का विदेहस्थ सीमंधर भगवान के समवसरण में जाना व वहाँ से आकर समयसारादि ग्रंथों की रचना करना

अन्य स्थल पर ऐसा भी आता है, कि पुण्य और पवित्रता में समृद्ध ऐसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव को प्रकट हुई आकाशगामिनी ऋद्धि से वे सीमंधर भगवान के समवसरण में गये थे। तब चक्रवर्ती ने विस्मयता से भगवान को पूछा, कि हे नाथ। 'छोटे से देहयुक्त दिगम्बर मुनिराज ऐसे 'वे कौन हैं ?' लोग उन्हें

देख ही रहे थे, उस समय प्रभु की ध्वनि में आया, कि 'ये भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य हैं।' ऐसा सुनकर जयघोष सह नगरी में उत्सव हुआ। सप्ताह भर प्रभु के श्रीमुख से विनिर्गत दिव्यध्वनि श्रवण करके शुद्धात्मतत्त्व आदि सारभूत अर्थों को ग्रहण व अवधारित करके आप भरत में वापस आये। वहाँ श्रवण की हुई दिव्यध्वनि की खुमार में आपने प्रवचनसारादि ग्रंथों में उन सारभूत तत्त्वों को ठूंस-ठूंसकर भव्यों के लिए भर दिए। ऐसे ही भाव भगवान जयसेनाचार्यदेव ने उनकी टीका ग्रंथ में लिखे हैं।

आचार्य शुभचंद्रजी ने गुर्वावलि के अंत में लिखा है, कि श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने ऊर्जयंतगिरि में पाषाण निर्मित सरस्वती की मूर्ति को वाचाल कर दिया था, जिससे आपके गच्छ का नाम 'सारस्वत' अर्थात् 'सरस्वती गच्छ' पड़ा था। चार अंगुल पर आकाशगमन की ऋद्धि आपको प्राप्त थी। ऐसा शिलालेखों आदि में आता है।

भगवान जयसेनाचार्यदेवानुसार आप कुमारनंदि सिद्धांतिदेव के शिष्य थे। उस पर से ऐसा भी लगता है, कि कुमारनंदि सिद्धांतिदेव आपके विद्यागुरु-दीक्षागुरु हों, व भगवान जिनचंद्रस्वामी ने आपको आचार्यपदवी से सुशोभित किया हो।

'पद्मनंदी, कुन्दकुन्दाचार्य, एलाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य और गृद्धपिच्छाचार्य'—इन पाँच नामों से आप युक्त थे। पद्मनंदी आपका दीक्षा का नाम है। आचार्य इंद्रनंदी ने आचार्य पद्मनंदी को कुंडकुंदपुर का बतलाया है। श्रवणबेलगोला के कितने ही शिलालेखों में आपका कोण्डकुंद नाम लिखा है। गुंटकल रेलवे स्टेशन से दक्षिण की ओर लगभग 8 कि०मी० पर एक कोनकुंडल नाम का स्थान है, जो अनंतपुर जिले के गुटी तालुके में स्थित है। शिलालेख में उसका प्राचीन नाम 'कोंड़कुंदे' मिलता है। यहाँ के निवासी इसे आज भी 'कोडकुंदी' कहते हैं। बहुत कुछ संभव है, कि कुन्दकुन्दाचार्य का जन्मस्थान यही हो और इसी कारण आपका नाम 'कुन्दकुन्द' रूप से प्रसिद्ध है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विदेहक्षेत्र में 'इलायची' जैसे प्रतीत होते थे। अत: आपको लोग एलाचार्य भी कहने लगे। कहा जाता है, कि शास्त्र लिखते समय आपकी

ग्रीवा थोड़ी सी टेढ़ी हो गई थी, अत: लोग आपको वक्रग्रीवाचार्य भी कहते थे तथा ऐसा आता है कि विदेह जाते समय मोरपिच्छ गिर जाने से आपने 'गृद्धपिच्छों की पींछी' अंगीकार की थी। अत: आपको लोग गृद्धपिच्छाचार्य से भी जानते हैं।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव शक संवत की पहली शताब्दी के विद्वान थे। आपका गिरनार सिद्धक्षेत्र पर श्वेतांबर साधुओं से वाद हुआ था व उसमें आपने दिगम्बर जिनधर्म को प्राचीन व सत्य सिद्ध किया था।

दिगम्बर जैन ग्रंथों में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य रचित ग्रंथ अपना अलग प्रभाव रखते हैं। उनकी वर्णन शैली ही इस प्रकार की है कि पाठक उससे वस्तुस्वरूप, आत्मा और आत्मानुभव को बड़ी सरलता से ग्रहण कर लेते हैं। व्यर्थ के विस्तार से रहित, नपे-तुले शब्दों में किसी बात को कहना इन ग्रंथों की विशेषता है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी सीधी हृदय पर असर करती है।

निम्नांकित ग्रंथ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित निर्विवादरूप से माने जाते हैं तथा जैन समाज में उनका सर्वोपरि स्थान है। (1) समयसार, (2) प्रवचनसार, (3) नियमसार, (4) पंचास्तिकायसंग्रह, (5) दर्शनपाहुड़, (6) सूत्रपाहुड़, (7) चारित्रपाहुड़, (8) बोधपाहुड़, (9) भावपाहुड़, (10) मोक्षपाहुड़, (11) लिंगपाहुड़, (12) शीलपाहुड़ आदि 84 पाहुड़, (13) वारसअणुपेक्खा, (14) भक्तिसंग्रह, (15) 12000 श्लोक प्रमाण परिकर्म (षट्खंडागम टीका), तथा रयणसार ग्रंथ भी आपका माना जाता है।

भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव ने 11 वर्ष की उम्र में भगवती जिनदीक्षा ली थी। 33 वर्ष पश्चात् शक सं. 49 (ई.स. 127) पोष कृष्ण 8 को भगवान जिनचंद्रस्वामी आचार्यदेव ने चतुर्विध संघ की उपस्थिति में आचार्यपदवी से आपको अनुगृहीत किया था। पश्चात् वे 51 वर्ष 10 मास तक विराजित रहे। आपकी कुल आयु 95 वर्ष, 10 मास व 15 दिन की थी। अत: आपका काल ई.स. 127-179 माना जाता है।

विदेहक्षेत्र में साक्षात् कुन्दकुन्दाचार्य के दर्शन करनेवाले राजपुत्र

फतेहमंदकुमार भरत में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के रूप में पधारे। उनको आपके समयसार शास्त्र की ऐसी असर हुई, कि समयसार मिलने की अल्पावधि में ही उन्होंने निर्मल स्वानुभूति प्राप्त की। इतना ही नहीं, आपके ग्रंथों पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने किए प्रवचनों की अद्‌भुत असर से, समग्र भारतवर्ष का जैन समाज यत्‌किंचित्‌ अपने पुरुषार्थ अनुसार आत्म-हित में रुचिवंत बन रहे हैं। यह सब भगवान कुन्दकुन्ददेव का ही उपकार है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के ही धर्मतीर्थ को कहानगुरु ने चेतनवंत बनाया।

ऐसे महासमर्थ भावलिंगत्व के तादृशस्वरूप
भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव को कोटि कोटि वंदना।

साभार : भगवान महावीर की आचार्य परम्परा

॥ श्री महावीराय नमः॥

मंगल आमंत्रण

अवश्य पधारिये

चैतन्यधाम अहमदाबाद में

५१वां आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

रविवार, 29 जुलाई से रविवार, 5 अगस्त 2018

स्थान - चैतन्यधाम, पोस्ट धणप, अहमदाबाद (गुजरात)

आयोजक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई

पंजीयन हेतु संपर्क करें -

सुनीलभाई शाह - 0982012009; विराग शास्त्री - 09300642434

कुगुरु

(1) मिथ्यावेषधारी रागी कुगुरुओं के द्वारा ठगाये जाते हुए जीव अपनी धर्म रूपी निधि के नष्ट होते हुए भी इस बात को मानते नहीं हैं, जानते हैं ॥गाथा 5 ॥

(2) **प्रश्न** - हमारे तो मिथ्यावेषधारी कुगुरुओं की सेवा कुलक्रम से चली आई है तो हम अपने कुलधर्म को कैसे छोड़ दें ?

उत्तर- हे मूढ़! लोकप्रवाह तथा कुलक्रम में धर्म नहीं होता। यदि लोकप्रवाह अर्थात् अज्ञानी जीवों के द्वारा माने हुए आचरण और अपने कुलक्रम में ही धर्म हो तो म्लेच्छों के कुल में चली आई हुई हिंसा से भी धर्म होगा तब फिर अधर्म की परिपाटी कौन सी ठहरेगी ! ॥6 ॥

(3) यदि कोई अपने को बड़े आचार्यों के कुल का बताकर पाप करेगा तो पापी ही है, गुरु नहीं है-ऐसा जानना ॥7 ॥

(4) कई जीव संसार से छूटने के लिए कुगुरुओं का सेवन करते हैं, उनको यहाँ कहा है कि वीतराग भाव के पोषक जिनवचनों को जानकर भी जब संसार से उदासीनता नहीं उपजती तो फिर राग-द्वेष को पुष्ट करनेवाले कुगुरुओं के निकट संसार से विरक्तता कैसे उपजेगी अर्थात् कभी भी नहीं उपजेगी ॥8 ॥

(5) कई जीव व्यापारादि को छोड़कर ज्ञान बिना आचरण करते हुए भी अपने आपको गुरु मानते हैं, उनसे कहा है कि 'व्यापारादि में होनेवाला आरंभ इतना पाप नहीं है जितना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व सब पापों में बड़ा पाप है' ॥10 ॥

(6) विद्यादि का चमत्कार देखकर भी कुगुरु का प्रसंग करना योग्य नहीं है क्योंकि स्वेच्छाचारी के उपदेश से अपने श्रद्धानादि मलिन हो जाने से बहुत बड़ी हानि होती है ॥18 ॥

(7) अश्रद्धानी कुगुरु के मुख से यदि शास्त्र सुने तो श्रद्धान निश्चल नहीं होता-ऐसा तात्पर्य है ॥22 ॥

(8) वह ही तो कथा है, वह ही उपदेश है और वह ही ज्ञान है, जिससे जीव गुरु का और कुगुरु का स्वरूप जान ले ॥24 ॥

(9) पंचम काल में गुरु भाट हो गए जो शब्दों से दातार की स्तुति करके दान को लेते हैं ॥31॥

(10) आज जो गुरु कहलाते हैं, वे अपनी महिमा में आसक्त हुए यथार्थ धर्म का स्वरूप नहीं कहते। अत: इस काल में जिनधर्म की विरलता है ॥32॥

(11) जो जीव श्रद्धानी हैं उनको कुगुरु यथार्थ मार्ग के लोपनेवाले अनिष्ट भासते हैं कि 'इनका संयोग जीवों को कदाचित् मत होओ' ॥34॥

(12) श्रीगुरु तिल के तुष मात्र भी परिग्रह से रहित ही होने चाहिए परंतु आज गृहस्थ से भी अधिक तो परिग्रह रखते हैं और अपने को गुरु मनवाते हैं, सो यह बड़ा अकार्य है ॥35॥

(13) सर्प को जो त्याग उसको तो सब भला कहते हैं परंतु कुगुरु को जो त्यागे उसे मूर्ख जीव निगुरा व दुष्ट कहते हैं—यह बड़े खेद की बात है क्योंकि सर्प से भी अधिक दु:खदायी कुगुरु है ॥36॥

(14) सर्प तो एक ही मरण देता है पर कुगुरु के प्रसंग से मिथ्यात्वादि पुष्ट होने से जीव निगोदादि में अनंत मरण पाता है, इसलिए सर्प का ग्रहण तो भला है परंतु कुगुरु का सेवन भला नहीं है ॥37॥

(15) गुण-दोष का निर्णय न करके जिनाज्ञा से प्रतिकूल कुगुरु को भी गुरु कहकर नमस्कार करते हैं, सो लोक क्या करे, भेड़चाल से ठगाया गया है ॥38॥

(16) मोह की यह भारी महिमा है कि नाना प्रकार के परिग्रहों की याचना करने पर भी कुगुरु प्रवीण ठहराया जाता है ॥39॥

(17) कुगुरु अपने मिथ्या वेष से भोले जीवों को ठगकर कुगति में खींचे ले जाते हैं। कैसे हैं वे कुगुरु? नष्ट बुद्धि हैं अर्थात् कार्य-अकार्य के विवेक से रहित हैं तथा लज्जारहित हैं एवं चाहे जो बोलते हैं। अत: ढीठ हैं और धर्मात्माओं के प्रति द्वेष रखने से दुष्ट भी हैं ॥40॥

(18) जो जीव जैसा होता है, उसकी वैसे ही जीव के साथ प्रीति होती है सो जो तीव्र मोही कुगुरु हैं, उनके प्रति मोहियाँ की ही प्रीति होती है ॥41॥

(19) कुगुरु को पक्षपातवश सुगुरु मिथ्यादृष्टि जीव ही बतलाते हैं ॥44॥

(20) कुगुरु मिथ्यात्व का आचरण करते हुए भी स्वयं को सुगुरु का शिष्य बताते

हैं और वस्त्रादि परिग्रह धारण करते हुए भी अपना अचार्य आदि पद मानते हैं, सो योग्य नहीं ॥72 ॥

(21) मात्र वेष धारण किया है जिन्होंने उन्हें वंदन करने से, उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करने से तथा उनकी विशेष भक्ति करने से जीव महा भव-समुद्र में डूबते हैं, इसलिए उन्हें दूर से ही त्याग देना चाहिए ॥82 ॥

(22) मिथ्यात्व के मूल कारण कुगुरुओं के ही त्याग करने का यहाँ प्रयोजन है ॥104 ॥

(23) इस दु:खमा काल में राग-द्वेष सहित नाम मात्र के गुरु बहुत हैं पर धर्मार्थी सुगुरु दुर्लभ हैं ॥112 ॥

(24) कितने ही गुरु तो देखे जाते हुए भी तत्त्वज्ञानियों के हृदय में नहीं रमते अर्थात् वे लोक में तो गुरु कहलाते हैं परंतु उनमें गुरुपने के गुण नहीं होते, ऐसे गुरु तत्त्वज्ञानियों को नहीं रुचते पर कई गुरु अदृष्ट हैं, देखने में नहीं आते तो भी ज्ञानी उनका परोक्ष स्मरण करते हैं, जैसे जिन हैं, इष्ट जिनको ऐसे गणधरादि आज प्रत्यक्ष नहीं हैं तो भी ज्ञानियों के हृदय में वे रमते हैं ॥129 ॥

(25) 'हम तो कुगुरुओं के ही सुगुरु के समान जानकर पूजेंगे, गुणों की परीक्षा करके हमें क्या करना है'—ऐसा यदि कोई कहता है तो उसका निषेध है कि 'अति पापी और परिग्रहादि के धारी कुगुरुओं को तुम सुगुरु के समान नहीं मानो' ॥130 ॥

(26) भगवान की वाणी में स्थान-स्थान पर कहा गया है कि 'जो परिग्रहधारी विषयाभिलाषी आदि हैं, वे कुगुरु हैं, उन्हें सुगुरु नहीं मानो' सो तुम उस वाणी को प्रमाण करो ॥132 ॥

(27) रत्नत्रय का साधकपना साधु का लक्षण है सो निश्चय दृष्टि से अंतरंग तो दिखता नहीं परंतु व्यवहारनय से सिद्धांत में जो महाव्रतादि आचरण और गुरुओं के योग्य क्षेत्र-काल है, उसके द्वारा उन्हें परख लेना चाहिए कि वह इनमें है या नहीं सो गुरुओं के योग्य जो क्षेत्र-काल न हो वहाँ पर जो स्थित हों और पाँच महाव्रतादि का आचरण जिनमें नहीं पाया जाता हो, वे कुगुरु हैं ॥134 ॥

(28) जो-जो लोक में गुरु दीखते हैं अथवा गुरु कहलाते हैं। वे-वे शास्त्र के द्वारा परीक्षा करके ही पूजने योग्य हैं। शास्त्रोक्त गुण जिनमें नहीं दिखाई दें, उनको नहीं पूजना ॥139॥

(29) हमारे तो ये ही गुरु हैं, हमें गुण-दोष विचारने से क्या प्रयोजन—ऐसा पक्षपात त्यागकर शास्त्र में गुरु के जैसे गुण-दोष कहे हैं, वैसे विचार कर लोकमूढ़ता त्याग के गुरु को मानना योग्य है ॥140॥

(30) परिग्रहधारी कुगुरु के निमित्त से बुद्धिमानों की भी बुद्धि चलायमान हो जाती है। लोक में उनके द्वारा उत्पन्न किये हुए गहलभाव से निपुण पुरुष ही शुद्ध धर्म से चलित हो जाते हैं। अत: उनका निमित्त मिलाना योग्य नहीं है ॥141॥

(31) जिनके वचनों में जिनमंदिर, श्रावक और पंचायती द्रव्य आदि में भेद वर्तता है, वे युगप्रधान गुरु नहीं हैं अर्थात् कई चैत्यवासी पीताम्बर एवं रक्ताम्बर आदि कहते हैं कि 'यह तो हमारा मंदिर, हमारे श्रावक और हमारा द्रव्य है तथा ये चैत्यालय आदि हमारे नहीं है'—इस प्रकार का भेद माननेवाले गुरु नहीं हैं ॥152॥

[साभार : उपदेश सिद्धांत रत्नमाला]

पंडित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट जयपुर द्वारा
ज्ञानतीर्थ टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में
दिनांक 12 अगस्त से 21 अगस्त 2018 तक
आयोजित होने जा रहा
41वाँ आध्यात्मिक शिक्षण शिविर
में आप सपरिवार इष्ट-मित्रों सहित सादर आमन्त्रित हैं।
इस ज्ञानयज्ञ में तत्त्ववेत्ता डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल एवं अन्य अनेक विद्वानों के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा। शिविर में जयपुर आने हेतु आप अपने टिकट को बुक करा लेवें और कृपया आवासादि की समुचित व्यवस्था हेतु अपने पधारने की पूर्व सूचना जयपुर कार्यालय में अवश्य भेजें।
सम्पर्क : 0141-2705581, 2707458, email : ptstjaipur@yahoo.com

समाचार-दर्शन

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों की सोनगढ़ यात्रा

मङ्गलायतन : 21 जून से 29 जून 2018 तक प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों की सोनगढ़ यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई। इस यात्रा के सारथी मङ्गलायतन के निदेशक पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित संकेत एवं मयंक जैन रहे।

यह यात्रा तीर्थधाम मङ्गलायतन से प्रारम्भ होकर मथुरा चौरासी, बड़ौदरा, पावागढ़, सोनगढ़, एकलिया पार्श्वनाथ, पालीताना, घोंघा, भावनगर, उमराला, गढडा, वीछिया,, बोटाद, लींबड़ी, सुरेन्द्रनगर, बढवान, जोरावरनगर, वांकानेर, राजकोट, मोरबी, बवाणिया, चैतन्यधाम, कोबा-अहमदाबाद, लगभग 25 स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री एवं तद्भक्त बहिनश्री के मुख्य स्थलों के दर्शन करती हुई अत्यन्त प्रभावना के साथ सम्पन्न हुई।

इस यात्रा में विशेष योगदान श्री हंसमुखभाई बोरा, सोनगढ़; ब्रह्मचारिणी आशाबेन, सोनगढ़; ब्रह्मचारिणी कोकिलाबेन, सोनगढ़; पण्डित फूलचन्द शास्त्री, सोनगढ़; श्री कुमुदभाई, सोनगढ़; श्री अतुलभाई गाँधी, सोनगढ़; श्री दिलीपभाई, उमराला; श्री हीरालाल काला, भावनगर; श्री राजाभाई, बोटाद; श्री द्विजेशभाई, सुरेन्द्रनगर; श्री रमेशभाई, बढ़वान; पण्डित श्री ब्रजलालभाई, बढ़वान; श्री सुनीलभाई, राजकोट; श्री मुकुन्दभाई, राजकोट; श्री इन्दुभाई, मोरबी; श्री अजितभाई, मोरबी; पण्डित सचिन, चैतन्यधाम का लाभ मिला।

इस बार सोनगढ़ में विद्यार्थियों को पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा एवं पूजन, तीन समय गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन तथा पण्डित अशोक लुहाड़िया की कक्षा का विशेष लाभ प्राप्त हुआ। सोनगढ़ में पण्डित सोनू शास्त्री एवं विद्यार्थियों के साथ तथा चैतन्यधाम के विद्यार्थियों के साथ विशेष गोष्ठी का लाभ प्राप्त हुआ।

ब्रह्मचारिणी आशाबेन एवं ब्रह्मचारिणी कोकिलाबेन ने पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्री के जीवन के बारे में जानकारी दी। प्रमुख श्री हंसमुखभाई ने सोनगढ़ के नये आयतन बाहुबली मन्दिर एवं जम्बूद्वीप के बारे में विद्यार्थियों को बताया।

प्रत्येक स्थान पर पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन एवं पण्डित अशोक लुहाड़िया के स्वाध्याय का लाभ मिला एवं मङ्गलार्थी अर्चित, स्वर्णिम, प्रणव, आगम,

प्रांजल, वरांग, यश एवं अन्य मङ्गलार्थियों द्वारा तत्त्वचर्चा का भी लाभ मिला। सभी स्थानों पर साधर्मियों ने मङ्गलार्थियों की बहुत-बहुत प्रशंसा की। इस यात्रा में श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई एवं श्री अजित जैन, बड़ोदरा परिवार का विशेष योगदान रहा।

यात्रा से सम्बन्धित चित्र आगामी अंक में प्रकाशित किये जाएँगे।

फिनिक्स, यू.एस.ए. में श्री आदिनाथ लघु पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न

फिनिक्स : दिनांक 15 जून से 17 जून 2018 तक अमेरिका देश के ऐरिजोना स्टेट में स्थित, फिनिक्स नगर में पण्डित संजय शास्त्री, मङ्गलायतन के प्रतिष्ठाचार्यत्व एवं डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका के निर्देशन में श्री 1008 आदिनाथ लघु पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव शुद्ध तेरापंथी आम्नाय से, सानन्द सम्पन्न हुआ।

ज्ञात हो कि दस वर्ष पूर्व फिनिक्स नगर में, तीर्थधाम मङ्गलायतन के निर्देशन में, विशाल जिनमन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ था। उस समय मानस्तम्भ बनकर तैयार हो चुका था किन्तु मानस्तम्भ में जिनबिम्ब विराजमान नहीं हुए थे। अब चार जिनबिम्बों को प्रतिष्ठित करके; मानस्तम्भ की शुद्धि करके, आदि प्रभु के चारों जिनबिम्बों को भक्तिभावपूर्वक विराजमान किया गया। प्रथम दिन पाँचों कल्याणक की भक्तिपूर्वक ध्वजारोहण की विधि हुई एवं प्रतिमाओं की शुद्धिपूर्वक प्रशस्ति लेखन का कार्यक्रम हुआ। द्वितीय दिन इन्द्र प्रतिष्ठापूर्वक यागमण्डल विधान सम्पन्न हुआ एवं गर्भ, जन्म और तप की विधि प्रतिष्ठापाठ के अनुसार सम्पन्न की गयी। तृतीय दिन केवलज्ञान एवं निर्वाण के मन्त्रोंपूर्वक प्रतिमाएँ पूजनीय हुई। घटयात्रापूर्वक मानस्तम्भ की शुद्धि हुई एवं विशाल क्रेन द्वारा ऊपर के भाग में भगवान आदिनाथ के चारों जिनबिम्बों को साधर्मियों द्वारा विराजमान किया गया। प्रतिमा विराजमानकर्ता में श्री किरीटभाई गोसलिया, डॉ. दिलीपभाई बोबरा एवं श्री ज्ञानचन्दजी कनाड़ा थे।

लघु पंच कल्याणक का यह आदर्श रूप लोगों के बहुत मन भाया। अल्प व्यय, शुद्ध मन्त्रविधि एवं आदर्श रूप से सम्पन्न यह प्रतिष्ठा महोत्सव अनावश्यक खर्च भार से मुक्त था और न ही किसी से पैसा माँगने का श्रम करना पड़ा। इस प्रकार के प्रतिष्ठा महोत्सवों का आयोजन असमर्थ लघु मुमुक्षु मण्डल करें तो मुमुक्षु समाज को एक नयी दिशा मिल सकती है।

फिनिक्स, यूएसए में संपन्न

लघु पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की झलकियाँ

प्रकाशन तिथि - 14 जुलाई 2018 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 जुलाई 2018
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

आदरणीय पण्डित उत्तमचन्दजी का चिरवियोग

आदरणीय पण्डित उत्तमचन्दजी, पूज्य गुरुदेव की सभा के रत्नों में एक रत्न थे। जिन्होंने अपना सारा जीवन तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में लगाया। आपने निर्भीक होकर तर्कयुक्ति और आगम से सत्य को प्रस्तुत किया। न केवल प्रचार-प्रसार किया अपितु आदर्श जीवन जीते हुए तत्त्व का रसपान स्वयं भी किया।

आपने समाज को सदा ही सही दिशा-निर्देश दिया। आपके उपकारों के प्रति मुमुक्षु समाज सदा ही कृतज्ञ रहेगा।

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, मङ्गलायतन परिवार अलीगढ़ आपके शीघ्र मोक्ष की कामना करता हुआ परमपद की भावना भाता है।

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com